

अध्याय II: सृष्टि (निर्माण)

"कुछ भी आरंभ या समाप्त नहीं होता है। सब कुछ बदलता या रूपांतरित होता है। जीवन और मृत्यु केवल परिवर्तन के तरीके हैं जो पौधे से लेकर स्वयं ब्रह्मा तक, महत्वपूर्ण जीवन-अणु को नियंत्रित करते हैं।" — अथर्ववेद

"एक अजन्मा (आत्मा), अपने आनंद के लिए, एक अजन्मा (प्रकृति) के पास जाता है जो लाल, सफेद और काले रंग की है, एक रूप की है, और कई संतानों को जन्म देती है।" — श्वेताश्वतर उपनिषद्, iv. 5

विचारशील दुनिया के लिए चेतना के उदय के क्षण से ही, मनुष्य ने हमेशा ब्रह्मांड के, सामान्य चीजों के, और विशेष रूप से स्वयं के चिंतन को एक अत्यंत आकर्षक विषय पाया है। विश्व की उत्पत्ति की समस्या प्राचीन काल से लेकर वर्तमान क्षण तक सभी प्रकार के विचारकों के लिए सबसे बड़ा विषय रही है; और उन्नीसवीं सदी के अंत में लिखते हुए, हैकेल इसे "सभी ब्रह्मांडीय समस्याओं में सबसे महान, सबसे विशाल और सबसे कठिन" मानते हैं। इस निस्संदेह कठिन समस्या के कई और विभिन्न समाधान प्रस्तुत किए गए हैं; और बुद्धिजीवियों के लिए इस विषय पर एक-दूसरे से सहमत होना हमेशा आसान नहीं रहा है।

विभिन्न धार्मिक दृष्टिकोण:

- **आस्तिक धर्मशास्त्र (Theistic Theology):** यह मानता है कि दुनिया का प्रथम कारण एक आध्यात्मिक सत्ता है, जो सभी चीजों और प्रत्येक व्यक्ति का निर्माता है।
- **इस्लामी मान्यता:** मुसलमान मानते हैं कि एक निर्माता ने 'कुन' (= हो जा) कहकर ब्रह्मांड बनाया, और मानो सभी चीजें "शून्य" (nothing) से बन गईं।
- **ईसाई मान्यता:** उत्पत्ति (Genesis) की पुस्तक में दिए गए वृत्तांत पर आधारित ईसाई सृष्टि की कहानी भी कुछ इसी तरह की है।

विश्व-प्रक्रिया को समझाने का प्रयास करने वाले विचारकों के स्कूल मुख्य रूप से दो खेमों में बंटे हैं: यथार्थवाद (**Realism**) और आदर्शवाद (**Idealism**)।

इन प्रणालियों की सीमा पर कपिल की सांख्य प्रणाली खड़ी है, जो पुरुष (आत्मा) और प्रकृति (पदार्थ/स्वभाव) के द्वैतवाद को मानती है। सांख्य के अनुसार, प्रकृति शाश्वत है, और ब्रह्मांडीय विघटन (प्रलय) की स्थिति के दौरान, यह अपने तीन अंतर्निहित गुणों (गुणों) के पूर्ण संतुलन की स्थिति में रहती है:

- सत्त्व (प्रकाश और बुद्धि का सिद्धांत)
- रजस (गतिविधि या ऊर्जा)
- तमस (द्रव्यमान, जड़ता, या अंधकार)

इस अवस्था में, ऊर्जा अव्यक्त होती है, और सचेत अभिव्यक्ति उप-अव्यक्त होती है। इस प्रकार प्रकृति का विकास निरंतर आगे बढ़ता है, दुनिया का निर्माण और विनाश करता है।

हिंदू दर्शन के अन्य दृष्टिकोण:

हिंदू विचार के अन्य स्कूलों में अलग-अलग विचार प्रचलित थे। इनमें से एक स्कूल के अनुसार, ब्रह्मांड की सामग्री में आकाश और प्राण (जीवन) शामिल हैं। स्वामी विवेकानंद आकाश के कार्य को इस प्रकार समझाते हैं:

"सृष्टि के आरंभ में केवल आकाश (ईथर) होता है। यह आकाश ही है जो वायु बनता है, जो तरल पदार्थ बनता है, जो ठोस बनता है; यह आकाश ही है जो सूर्य, पृथ्वी, चंद्रमा, तारे, धूमकेतु बनता है;

यह आकाश ही है जो शरीर, पशु शरीर, पौधे, हर वह रूप जो हम देखते हैं, हर वह चीज जिसे महसूस किया जा सकता है, हर वह चीज जो मौजूद है, बनता है। चक्र के अंत में, ठोस, तरल, गैसों सभी फिर से आकाश में पिघल जाती हैं, और अगली सृष्टि भी इसी आकाश से आगे बढ़ती है।"

न्याय स्कूल के अनुसार, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के परमाणु ब्रह्मांड के दृश्य और मूर्त भागों के भौतिक कारण हैं, और वे स्वयं स्वयंभू और शाश्वत हैं। वैशेषिक परमाणुओं के सिद्धांत की सूक्ष्मता से जांच करते हैं। उनके स्कूल के संस्थापक, जिनका उपनाम कणाद (शाब्दिक रूप से, परमाणु खाने वाला) था, परमाणुओं की प्रकृति और एकत्रीकरण को इस प्रकार समझाते हैं:

"सूर्य की किरण में जो धूल का कण दिखाई देता है वह सबसे छोटी बोधगम्य मात्रा है। एक पदार्थ और एक प्रभाव होने के नाते, यह उससे बना होना चाहिए जो उससे छोटा है; और यह भी एक पदार्थ और एक प्रभाव है, क्योंकि परिमाण वाले पदार्थ का घटक भाग एक प्रभाव होना चाहिए। यह फिर से उससे बना होना चाहिए जो छोटा है, और वह छोटी चीज एक परमाणु है। यह सरल और अमिश्रित है, अन्यथा श्रृंखला अंतहीन होगी, और यदि इसे अनिश्चित काल तक आगे बढ़ाया जाता, तो सरसों के बीज और पहाड़, या हाथी के बीच परिमाण का कोई अंतर नहीं होता, प्रत्येक में समान रूप से कणों की अनंतता होती।"

परम परमाणु, तब, एक सरल इकाई है। वैशेषिक समझाते हैं कि परम परमाणुओं के गुण प्रभाव में खुद को दिखाते हैं। इस प्रकार सृष्टि एक अदृश्य, विशिष्ट गुण द्वारा लाए गए परमाणुओं के संयोजन का परिणाम है, जो रचनात्मक इच्छा या समय हो सकता है। इस प्रकार यथार्थवादी स्कूल के प्राचीन हिंदू ऋषियों द्वारा ब्रह्मांड के निर्माण को समझाया गया था।

शून्य या शून्यता की स्थिति (The State of Nought or Nothingness)

"शून्यता" की उस अवधारणा को समझने के लिए जिससे धर्मशास्त्री दावा करते हैं कि दुनिया बनाई गई थी, हमें प्राचीन रहस्यमय विवरणों की ओर मुड़ना चाहिए:

- "समय नहीं था, क्योंकि वह अवधि के अनंत वक्ष में सोया हुआ था।"
- "सार्वभौमिक मन नहीं था, क्योंकि इसे धारण करने के लिए कोई बुद्धिमान प्राणी नहीं थे।"
- "दुख के महान कारण नहीं थे, क्योंकि उन्हें पैदा करने और उनके जाल में फंसने वाला कोई नहीं था।"
- "अकेले अंधकार ने असीम सब कुछ भर दिया था, क्योंकि पिता, माता, पुत्र एक बार फिर से एक थे, और पुत्र अभी तक नए चक्र और उस पर अपनी तीर्थयात्रा के लिए जागृत नहीं हुआ था।"
- "सात सच्चाइयों का अस्तित्व समाप्त हो गया था और ब्रह्मांड, जो आवश्यकता का पुत्र है, परम में विलीन हो गया था ताकि उस सत्ता द्वारा बाहर निकाला जा सके जो है और फिर भी नहीं है। शून्यता (Nought) थी।"

उपरोक्त "शून्यता" की स्थिति की हमारी अवधारणा का एक सटीक विवरण है। जो वास्तव में और सत्य रूप में अपने लिए अस्तित्व में है, वह कभी समाप्त नहीं हो सकता; और यहाँ तक कि जब किसी चीज़ का रूप गैर-अभिव्यक्ति की स्थिति में चला जाता है और हम कहते हैं 'यह नहीं है', तो जिस सामग्री से वह बना था वह किसी न किसी रूप में अस्तित्व में रहता है। इसे ही अलग शब्दों में कहें तो, सभी चीज़ें अभिव्यक्ति से पहले कारण संबंधी संभावनाएं हैं, और अभिव्यक्ति के दौरान बोधगम्य वास्तविकताएं हैं, जबकि उनके उदय का वास्तविक कारण उनके परिवर्तनों से अप्रभावित रहता है।

फिर पदार्थ स्वयं कहाँ से आया? दार्शनिक रूप से, यह प्रश्न ही बेतुका है, क्योंकि पदार्थ स्वयं अस्तित्व है, और इस रूप में, वह अपना स्वयं का स्रोत है। बीज या पेड़ में से कौन पहले था, इसका कोई सवाल नहीं है; पेड़ बीज में है, और बीज पेड़ में है।

सर ओलिवर लॉज सही कहते हैं:

"हम सभी काफी हद तक सहमत हो सकते हैं कि जो कुछ भी वास्तव में और मौलिक रूप से मौजूद है, वह समय से स्वतंत्र होना चाहिए। यह कई बदलावों से गुजर सकता है, और इस प्रकार इसका एक इतिहास हो सकता है; लेकिन इसे किसी निश्चित अवधि में अस्तित्व से बाहर जाने या अस्तित्व में आने के रूप में शायद ही सोचा जा सकता है..."

यह धारणा कि ब्रह्मांड चमत्कारिक रूप से केवल लगभग 6,000 साल पहले बनाया गया था, वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा अपर्याप्त साबित हो चुकी है।

संगठन बनाम निर्माण (Organization vs. Manufacture)

ब्रह्मांड बिना किसी बाहरी निर्माता के खुद को कैसे व्यवस्थित करता है, यह समझने के लिए, हमें विनिर्माण (Manufacturing) और आयोजन/संगठन (Organizing) के बीच के अंतर का अध्ययन करना चाहिए। हेनरी बर्गसन अपनी उत्कृष्ट कृति क्रिएटिव इवोल्यूशन में इसे समझाते हैं:

"विनिर्माण करना एक बात है, और व्यवस्थित (संगठित) करना बिल्कुल अलग बात है। विनिर्माण मनुष्य की विशेषता है। इसमें पदार्थ के उन हिस्सों को इकट्ठा करना शामिल है जिन्हें हमने इस तरह से काटा है कि हम उन्हें एक साथ फिट कर सकें और उनसे एक सामान्य क्रिया प्राप्त कर सकें... इसके विपरीत, संगठन केंद्र से परिधि की ओर काम करता है। यह एक ऐसे बिंदु से शुरू होता है जो लगभग एक गणितीय बिंदु है, और इस बिंदु के चारों ओर गाढ़े होने वाली तरंगों द्वारा फैलता है जो बड़ी होती जाती हैं... आयोजन कार्य में कुछ विस्फोटक होता है: इसे शुरुआत में सबसे छोटी संभव जगह, कम से कम पदार्थ की आवश्यकता होती है, मानो आयोजन करने वाली ताकतें अंतरिक्ष में अनिच्छा से प्रवेश करती हों।"

आत्मा का सार और रूह की स्वतंत्रता

यदि हम आत्मा और मानव जीवन के साथ आने वाली मानसिक घटनाओं (psychic phenomena) की जांच करें, तो हमें प्रमाण मिलता है कि आत्मा एक स्वतंत्र, कभी न मरने वाली वास्तविकता है। पुनर्जन्मवादियों के ऐतिहासिक दावे अक्सर क्रिप्टोमनेशिया (अवचेतन स्मृति) या अवचेतन आविष्कारशीलता द्वारा खराब हो जाते हैं।

प्रायोगिक मनोविज्ञान के छात्र के लिए, प्रायोगिक सम्मोहन (hypnotism) भी इसी तरह की घटनाएँ उत्पन्न करता है। सम्मोहन के तहत, यदि किसी विषय को बताया जाए कि वह राष्ट्रपति है, या किसी मृत मित्र की आत्मा है, तो वह उस भूमिका को पूरी तरह से अपना लेता है।

टी. जे. हडसन ने ए साइंटिफिक डिमॉन्स्ट्रेशन ऑफ फ्यूचर लाइफ में लिखा है:

"भविष्य के जीवन के तथ्य को प्रदर्शित करने में, मैंने बस मनुष्य के मानसिक संगठन का विश्लेषण किया है, और दिखाया है कि... किसी अन्य निष्कर्ष का होना तार्किक और वैज्ञानिक रूप से अस्थिर है।"

आत्मा, जीवन या बुद्धि, एक स्व-अस्तित्व वाली वास्तविकता है, जो पदार्थ और उसके रूपों से बिल्कुल स्वतंत्र है। भौतिकवाद (Materialism) ने चेतना को पदार्थ का उत्पाद मानकर अंधेरे में एक बड़ी छलांग लगाई है। प्राचीन काल के रहस्यवादी शोधकर्ताओं ने अपनी खोज को भौतिक पदार्थ के परमाणु तक धकेला, यह पाते हुए कि यह एस्ट्रल (Astral), मेंटल, बुद्धिक, निर्वाणिक, परिनिर्वाणिक और महापरिनिर्वाणिक स्तरों के सूक्ष्म पदार्थ में टूट जाता है। फिर भी, कोई भी कभी ऐसे भौतिक परमाणुओं को इंगित करने में सक्षम नहीं हुआ है जिनसे तर्क, स्मृति, चयन और इच्छाशक्ति को निकाला जा सके।

अद्वैत आदर्शवाद का भ्रम (वेदांत और माया)

अद्वैत वेदांत (Monistic Vedanta) बोधगम्य दुनिया को माया (भ्रम) घोषित करके बहुलता की समस्या को सरल बनाने का प्रयास करता है:

"ब्रह्म एक है और दूसरा कोई नहीं — एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।"

वेदांत का मत है कि चेतना जाग्रत, स्वप्न, गहरी नींद और तुरीय (अति-चेतना) के स्तरों पर बरकरार रहती है। मुस्लिम आदर्शवाद का हम्रा ओस्त ("वह सब है") सिद्धांत भी इसी अद्वैत वेदांत की लगभग सटीक प्रतिलिपि है।

लेकिन अद्वैतवाद केवल सामान्य ज्ञान का गला घोटने और ठोस प्रकृति के प्रति आँखें मूंदने से ही संभव है। वेदांत दर्शन मूल रूप से विरोधाभासी है क्योंकि यह हमें शुरुआत में ही ब्रह्म और माया का द्वैतवाद देता है। यदि माया वास्तव में मौजूद है, तो अद्वैतवाद विफल हो जाता है; यदि इसका कोई अस्तित्व नहीं है, तो इसे महसूस नहीं किया जा सकता।

यथार्थवादी और आदर्शवादी दर्शन दोनों का अंतिम मुकुट बिंदु, यदि उनके तार्किक अंत तक ले जाया जाए, तो समान है:

"जीवन भगवान है; और मैं वही हूँ" या जैसा कि बाइबिल कहती है, "मैंने कहा है, तुम देवता हो।"

सृष्टि के सिद्धांतों का सारांश

नीचे दी गई तालिका विश्लेषण किए गए सृष्टि के प्रमुख सिद्धांतों की स्थिति को दर्शाती है:

सिद्धांत	प्रथम कारण / कारण	विश्व-प्रक्रिया की प्रकृति
(A) आस्तिक वृत्तांत	ईश्वर (एक आत्मा)	एक वास्तविक भौतिक ब्रह्मांड के आदेश के शब्द द्वारा निर्माण; शून्यता में से कुछ बनाना।
(B) हिंदू सिद्धांत	ईश्वर (एक आत्मा)	एक मकड़ी के जाले की "नकल" में, एक वास्तविक ब्रह्मांड का प्रक्षेपण और अंतिम पुनः अवशोषण।

(C) भौतिकवादी सिद्धांत	(1) मृत, अचेतन पदार्थ, और (2) यांत्रिक बल	विकास, जिसके दौरान मृत पदार्थ से चेतना उत्पन्न होती है (शून्यता से कुछ बनाने के बराबर)।
(D) वेदांतिक (अद्वैत) सिद्धांत	सत्-चित्-आनंद (चेतना)	सृष्टि मायाशक्ति (कल्पना की क्षमता) के कारण होती है और विशुद्ध रूप से भ्रामक है।

धर्मशास्त्री इसलिए गलत है क्योंकि उसके पास ईश्वर की कोई सच्ची अवधारणा नहीं है, वह एक शाश्वत ब्रह्मांड का कालानुक्रमिक मूल बताता है, और शून्यता से सृष्टि के चमत्कार पर जोर देता है। वैज्ञानिक दुनिया के लिए धर्म को उपहास का पात्र बनाने के लिए वही जिम्मेदार है। जब सिद्धांत की वैज्ञानिक तर्ज पर ठीक से समझा जाता है, तो धर्म और विज्ञान बिना किसी घर्षण के हाथ में हाथ डालकर काम करते हैं, और आत्मा की दिव्य शाश्वतता के अंतिम सत्य को स्थापित करते हैं।

यहाँ आपके द्वारा दिए गए दार्शनिक पाठ का हिंदी अनुवाद है। इसे स्पष्टता और आसान पठन के लिए व्यवस्थित किया गया है:

अध्याय III: ईश्वर

"एक दृष्टिकोण से, अर्थात् जीवित प्राणियों की अनंतता के संदर्भ में, यह अनेकता की विशेषता लिए हुए है; उन गुणों के भेद के बिना देखा जाए जो इसे कभी नहीं छोड़ते, तो यह सदैव एक है; इसके बदलते तौर-तरीकों के संबंध में, यह क्षणभंगुर और नश्वर है; इसके गुणों और पदार्थ की निरंतरता के संबंध में, यह स्थायी और शाश्वत है, हमेशा प्रकट होता है; ज्ञान के विषय के रूप में यह सर्वव्यापी है क्योंकि यह सब कुछ जानता है; रूप के दृष्टिकोण से, यह अपने स्वयं के विस्तार या आकार में रहता है; — आत्मा की अद्वितीय प्राकृतिक महिमा ऐसी ही है।" — अमृत चंद्र

"जो स्वयं को जान लेता है, वह ईश्वर को जान लेता है।" — पैगंबर मुहम्मद के कथन

आम आदमी के मन में ईश्वर की अवधारणा में एक ऐसी मायावी पकड़ का आकर्षण है जो सबसे विस्मयकारी और मोहक है। कई लोगों ने इस रहस्य को अनसुलझा माना है और इसे मानवीय सोच की पहुँच से परे घोषित किया है। एक प्राचीन हिंदू शास्त्र कहता है:—

"तुम देखने वाले के द्रष्टा को नहीं देख सकते, तुम सुनने वाले के श्रोता को नहीं सुन सकते, तुम समझने वाले के बोधकर्ता को नहीं समझ सकते, तुम जानने वाले के ज्ञाता को नहीं जान सकते।" — बृहदारण्यक उपनिषद्, 3. 4. 2

श्री रामकृष्ण परमहंस ईश्वर-ज्ञान की कठिनाई को स्पष्ट करने के लिए ईश्वर की तुलना चीनी के एक अनंत पहाड़ से और ऋषियों की तुलना चींटियों से करते थे, जिनके बारे में यह कल्पना नहीं की जा सकती कि वे पूरे पहाड़ को खा जाएँगी। शुकदेव और अन्य पवित्र ऋषि अधिक से अधिक सबसे बड़े प्रकार की चींटियाँ थे। यदि हम कहें कि वे चीनी के आठ या दस कण खाने में सक्षम थे, तो हमने उनके पक्ष में पर्याप्त कह दिया है। यह कहना उतना ही बेतुका है कि परम ईश्वर को किसी ने जान और समझ लिया है, जितना कि यह कहना कि कुछ चींटियों द्वारा चीनी का एक पहाड़ खाने के लिए घर ले जाया गया है।

हिंदू तत्त्वमीमांसकों (Metaphysicians) ने हमेशा यह माना है कि ईश्वर, ज्ञाता होने के नाते, स्वयं नहीं जाना जा सकता, क्योंकि जानने वाला विषय (ज्ञाता) कभी ज्ञान की वस्तु (जेय) नहीं बन सकता। लेकिन जहाँ यह सच है कि देवत्व को सूक्ष्मदर्शी, चीर-फाड़ करने वाले चाकू (scalpel), और भौतिक दुनिया में जांच के अन्य समान उपकरणों के अधीन नहीं किया जा सकता है, वहीं इसकी यथोचित सटीक अवधारणा प्राप्त करना मानवीय समझ से परे नहीं है।

रचयिता-ईश्वर की आलोचना (The Critique of the Creator-God)

यदि हम इस लोकप्रिय धार्मिक सिद्धांत की ओर मुड़ें कि एक सर्वोच्च निर्माता ने प्रत्येक मानव आत्मा का निर्माण किया है, तो हम तुरंत खुद को दुर्गम नैतिक और तार्किक कठिनाइयों में उलझा हुआ पाते हैं।

यदि कोई आत्मा अज्ञानी पैदा होती है, तो यह उसकी गलती नहीं है; क्योंकि उसे उसके ईश्वर द्वारा ऐसा ही बनाया गया था। लेकिन सवाल यह है: एक सर्वशक्तिमान निर्माता को अज्ञानी आत्माओं का निर्माण क्यों करना चाहिए और फिर उनके ज्ञानोदय के लिए लगातार पैगंबरों और रक्षकों को क्यों भेजना चाहिए? उनके बीच विरोधाभासी सिद्धांतों को क्यों फैलने दिया जाए, जिससे सामान्यतः सत्य को जानना लगभग असंभव हो जाए?

यह किसी भी तरह से सब कुछ नहीं है। हमें बताया गया है कि इस "भूल-भुलैया (comedy of errors)" का अंतिम कार्य प्रलय के दिन (Judgment Day) होगा। उस दिन, वही न्यायपूर्ण और सर्वशक्तिमान ईश्वर मनुष्य की त्रुटियों और कमियों को न्यायिक रूप से निर्धारित करने और उन पर फैसला सुनाने के लिए न्याय करने बैठेगा, और उन्हें हमेशा के लिए दंडित या पुरस्कृत करेगा। ऐसा भी प्रतीत होता है कि अज्ञानता की दलील स्वीकार नहीं की जाएगी। एक आत्मा यह दलील नहीं दे सकेगी कि उसे जो समझ मिली थी, वह उसे यह संतुष्ट करने में विफल रही कि पैगंबर मुहम्मद की शिक्षा ईसा मसीह के सिद्धांतों की तुलना में अधिक विश्वसनीय थी, या इसके विपरीत!

इसके अलावा, उसका क्या जो अपनी माँ के गर्भ में ही मर जाता है? अफसोस! यहां तक कि उसे भी प्रलय के दिन दंडित या पुरस्कृत होने के लिए प्रकट होना चाहिए, उसे स्वर्ग या नर्क में भेजा जाना चाहिए, क्योंकि लोकप्रिय आस्तिकता के ब्रह्मांड विज्ञान में आत्माओं के जाने के लिए कोई तीसरा स्थान नहीं है। न्यायिक विवेक के प्रयोग के लिए किसी भी नियम के अभाव में, किसी आत्मा को एक स्थान के बजाय दूसरे स्थान पर क्यों भेजा जाना चाहिए, यह पूरी तरह से मनमानी इच्छा का मामला प्रतीत होता है। ऐसी धारणाएँ मध्ययुगीन काल में सही अर्थ या ठोस धर्मशास्त्र के लिए पारित हो सकती थीं, लेकिन मानव सभ्यता की वर्तमान स्थिति में, बुद्धिमान लोगों को उन लोगों से कुछ बेहतर की उम्मीद करने का अधिकार है जो खुद को आध्यात्मिक शिक्षक के रूप में स्थापित करते हैं।

आत्मा अपने शरीर के निर्माता के रूप में

आत्मा भौतिक शरीर के साथ कैसे जुड़ जाती है? ईश्वरवादी धर्मशास्त्र (Deistic theology) को इस संबंध को दो में से एक तरीके से समझाने का प्रयास करना चाहिए:

- यह एक केंद्र के रूप में आत्मा से शुरू होता है और फिर उस पर पदार्थ (matter) का लेप कर देता है।
- या यह पहले उसी तरह से शरीर बनाता है जैसे एक आदमी घर बनाता है, और उसमें रहने के लिए आत्मा को डाल देता है।

दोनों ही मामलों में, आत्मा शरीर के माध्यम से कार्य करने या उसके स्नेह को अपने रूप में महसूस करने में असमर्थ होगी, क्योंकि वास्तविक अंतरंगता की गर्माहट दोनों मामलों में गायब होगी। ताकि आत्मा शरीर के साथ महसूस कर सके, उसे अपने बढ़ते आकार के साथ लगातार विस्तार करना चाहिए, ताकि विकास के हर पल में घर (शरीर) और उसके किरायेदार (आत्मा) के बीच पूर्ण सामंजस्य हो।

विकास की घटना का मतलब आत्मा पर पदार्थ का लेप करना नहीं है, न ही यह पट्टेदार द्वारा किसी घर पर कब्जा करने के समान है। यह स्वयं "किरायेदार" द्वारा आवश्यक सामग्री के अवशोषण और आत्मसात करने का परिणाम है। इस तथ्य के प्रति आश्चर्य होने के लिए जैविक प्राणियों के विकास और वृद्धि की प्रक्रिया को देखना ही पर्याप्त है। इसलिए, यह निष्कर्ष निकलता है कि भौतिक जीव का निर्माण तब तक संभव नहीं है जब तक कि आत्मा स्वयं उसका निर्माता न बन जाए।

ईश्वरवादी धर्मशास्त्र के पास एकमात्र अन्य विकल्प यह कहना है कि ईश्वर केवल शरीर के निर्माण की देखरेख करता है। लेकिन इसमें भी अपने स्वयं के शरीर को बनाने की आत्मा की क्षमता की स्वीकृति शामिल है, क्योंकि हम पत्थरों को राजमिस्त्री के रूप में प्रशिक्षित नहीं कर सकते।

इसके अलावा, जब हम विकृति और कुरूपता के मामलों को देखते हैं—उन उदाहरणों का तो जिक्र ही क्या जिनमें बच्चा जन्म से पहले ही मर जाता है, और शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के संबंध में भौतिक शरीरों की असमानताओं को देखते हैं—तो यह निष्कर्ष कि शरीर का निर्माण एक पूर्ण और निष्पक्ष वास्तुकार का काम नहीं हो सकता, अकाट्य हो जाता है। ये कठिनाइयाँ हमारे रास्ते से उसी क्षण दूर हो जाती हैं जब हम आत्मा को अपना स्वयं का ईश्वर और अपने स्वयं के शरीर का निर्माता मानते हैं।

सुख, हर्ष और परमानंद का मनोविज्ञान

देवत्व की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए, हमें आत्मा की भावनात्मक स्थिति का विश्लेषण करना चाहिए। हमें सुख (Pleasure) और हर्ष/प्रसन्नता (Joy) के बीच अंतर करने से शुरुआत करनी चाहिए:

- **सुख (Pleasure):** यह केवल इंद्रियों की संतुष्टि है, और इसलिए यह क्षणभंगुर और अल्पकालिक है। यह इंद्रियों का मामला है, और इसका वास्तविक अनुभव उस समय तक सीमित है जिसके दौरान वे अपनी वस्तुओं के संपर्क में हैं। उदाहरण के लिए, भोजन तभी तक स्वादिष्ट और रुचिकर लगता है जब तक कि स्वाद ग्रंथियाँ वास्तव में उसके संपर्क में होती हैं, लेकिन तब नहीं जब खाने का कार्य समाप्त हो जाता है और यह पेट में चला जाता है।
- **हर्ष (Joy):** यह एक ऐसी भावना है जिसमें स्वतंत्रता का तत्व होता है। यह उल्लास की स्थिति है और आत्माओं के उत्साह को इंगित करता है। धार्मिक शब्दावली में, यह एक साथ गौरवशाली और विजयी होने की स्थिति को दर्शाता है, जैसा कि इस गद्यांश में है: "जिसने उस आनंद के लिए जो उसके सामने रखा गया था, क्रूस को सह लिया" (इब्रानियों 12:2)।

हर्ष को पूरी तरह से समझने के लिए, आइए एक वास्तविक उदाहरण पर विचार करें। एक स्कूली लड़के का मामला लें जो अपनी वार्षिक परीक्षा में बैठा है, अपनी सफलता के बारे में सुनता है, और हर्ष महसूस करता है। इस उत्साह का कारण क्या है? यह खबर अपने आप में नहीं

है, न ही सफलता है, बल्कि इसकी निश्चितता (**certainty**) है जो उसकी भावना का अवसर है। यदि खबर प्रामाणिक नहीं होती, तो उल्लास पैदा नहीं किया जा सकता था, भले ही जानकारी कितनी भी सुखद क्यों न हो। हर्ष, तब, मन की एक अवस्था है जिसकी जड़ें मानसिक दृढ़ विश्वास में—दूसरे शब्दों में, विश्वास में—होती हैं। सुख बिल्कुल भी विश्वास पर निर्भर नहीं करता है, क्योंकि यह किसी मानसिक दृढ़ विश्वास से उत्पन्न नहीं होता है। लड़का हर्षित महसूस करता है क्योंकि कुछ स्थायी हासिल किया गया है।

इसके विपरीत, जब किसी उपक्रम में विफलता का संदेश प्राप्त होता है, तो यह केवल इसलिए पछतावा और दुख का कारण बनता है क्योंकि मन तुरंत दुर्घटना से उत्पन्न होने वाले सभी प्रकार के अप्रिय और अरुचिकर दृश्यों और परिणामों की कल्पना करना शुरू कर देता है।

- सच्चा हर्ष (**True Joy**): संवेदी सुख के विपरीत, सच्चा हर्ष स्वतंत्रता की भावना के अहसास से उत्पन्न होता है। यह एक सुखद या अप्रिय विचार-श्रृंखला का परिणाम नहीं है, बल्कि यह आत्मा के प्राकृतिक गुण, विशेषता, या संपत्ति की अभिव्यक्ति है जब इसे स्वयं पर छोड़ दिया जाता है, मानसिक कल्पनाओं और संवेदी उत्तेजनाओं दोनों से मुक्त।

किसी भी बाहरी सहायक—चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक—की घुसपैठ के बिना, आत्मा-पदार्थ का प्राकृतिक स्पंदन ही वह आनंददायी उल्लास है जिसे इसकी उच्चतम अभिव्यक्ति या रूप में परमानंद (**supreme bliss**) कहा जाता है।

अब यह स्पष्ट होना चाहिए कि देवत्व का आदर्श मनुष्य के लिए आकांक्षा करने के लिए किसी भी तरह से बहुत ऊँचा नहीं है। मनुष्य जिन दो तत्वों से बना है—अर्थात्, एक आत्मा (**atman**) और पदार्थ का एक शरीर—उनमें से पहला सबसे श्रेष्ठ स्थिति के लिए आवश्यक सभी चीजों से पूरी तरह संपन्न है। देवत्व का निर्माण करने वाले तत्वों में से कोई भी मानव आत्मा में कम नहीं है।